न्यायपालिका

भारतीय शासन प्रणाली का तीसरा आधार स्तम्भ न्यायपालिका है। भारत की शासन प्रणाली संघात्मक है अर्थात् यहां शक्तियों या कार्यों का विभाजन केन्द्र सरकार (भारत) तथा राज्य सरकारों के मध्य हुआ है किन्तु इन सबके बावजूद भी यहां न्यायपालिका एकीकृत है। इसका अर्थ पूरे देश के लिए एक ही सर्वोच्च न्यायालय है। केन्द्र और राज्यों के लिए पृथक–पृथक न्यायालय नहीं है और न ही यहां विभिन्न न्यायालयों के मध्य शक्तियों का विभाजन है। भारत सरकार अधिनियम 1935 के तहत संघीय न्यायालय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसके तहत भारत में संघीय न्यायालय की स्थापना 1 अक्टूबर 1937 को की गई। इसके प्रथम मुख्य न्यायाधीश सर मौरिस ग्वेयर थे। भारत की आजादी के बाद उच्चतम न्यायालय का उद्‌घाटन 28 जनवरी 1950 को दिल्ली में किया गया।

न्यायपालिका का आकार

भारतीय न्यायपालिका का संगठन शंकु की आकृति का है जिसमें सबसे शिखर पर उच्चतम न्यायालय उसके नीचे उच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के नीचे अधीनस्थ न्यायालय (जिला न्यायालय) विभिन्न जिलों में स्थापित किये गये हैं। जब वह सिविल मामलों की सुनवाई करता है तो वह जिला न्यायाधीश और जब आपराधिक मामलों की सुनवाई करता है तो सत्र न्यायाधीश कहलाता है। जिला एवं सत्र न्यायालय के नीचे मुंसिफ न्यायालय होते हैं जो हर जिले में अनेक होते हैं एवं मुंसिफ न्यायालय के नीचे न्याय पंचायतें कार्य करती हैं जो गांव में एक होती है।

स्वतंत्र न्यायपालिका की आवश्यकता

प्रत्येक समाज में एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से या व्यक्ति समूहों का आपस में अथवा व्यक्ति समूहों का सरकार के साथ निरंतर कुछ कारणों से विवाद चलता रहता है। इसी विवाद को निष्पक्ष रूप से सुलझााने के लिए न्यायपालिका की स्थापना की गई है। जो इस प्रकार के विवादों की जांच कर दोषी को सजा देने का कार्य करती है और साथ ही साथ विधायिका द्वारा या संसद द्वारा बनाये गये नियमों की जांच एवं कार्यपालिका द्वारा किये गये कार्यों की जांच भी निष्पक्ष रूप से करती है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता

न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ है कि सरकार के अन्य दो अंग विधायिका और कार्यपालिका, न्यायपालिका के कार्यों में हस्तक्षेप न करके उनके कार्यों में किसी भी प्रकार की बांधा न पहुंचाये ताकि वह अपना कार्य सही ढ़ंग से कर सकें, निष्पक्ष रूप से न्याय कर सके।

संघात्मक सरकार में संघ और राज्यों के मध्य विवाद के समाधान और संविधान की सर्वोच्चता बनाये रखने का दायित्व न्यायपालिका पर ही होता है। इसके साथ–साथ उस पर मूल अधिकारों के संरक्षण का भी दायित्व होता है इसके लिए न्यायपालिका का स्वतंत्र एवं निष्पक्ष होना अति आवश्यक है।

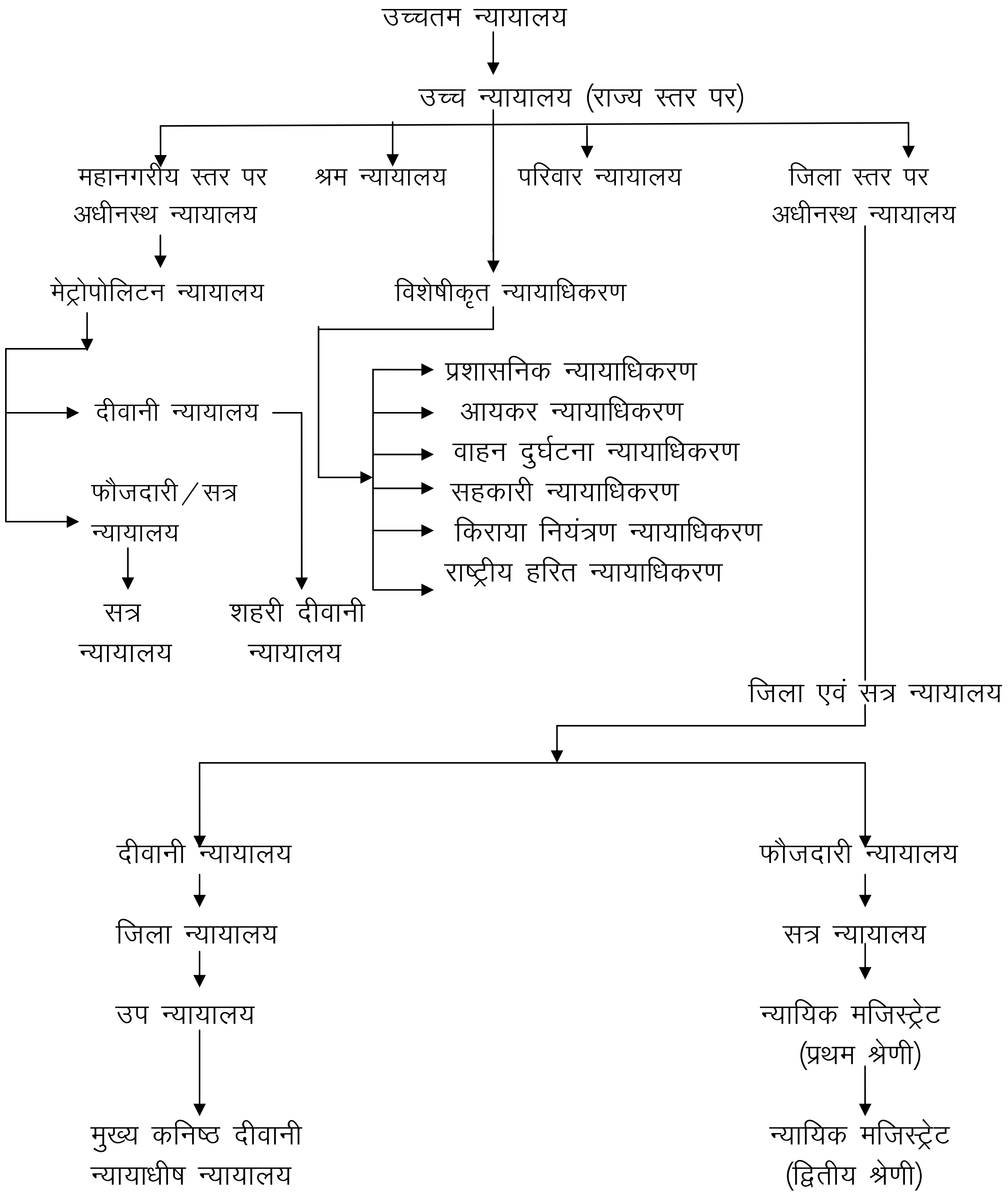
उच्चतम न्यायालय
उच्च न्यायालय (राज्य स्तर पर)
महानगरीय स्तर पर अधीनस्थ न्यायालय
श्रम न्यायालय
परिवार न्यायालय
जिला स्तर पर अधीनस्थ न्यायालय
मेट्रोपोलिटन न्यायालय
विशेषीकृत न्यायाधिकरण
प्रशासनिक न्यायाधिकरण
आयकर न्यायाधिकरण
वाहन दुर्घटना न्यायाधिकरण
सहकारी न्यायाधिकरण
किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण
राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण
दीवानी न्यायालय
फौजदारी/सत्र न्यायालय
सत्र न्यायालय
शहरी दीवानी न्यायालय
जिला एवं सत्र न्यायालय
दीवानी न्यायालय
फौजदारी न्यायालय
जिला न्यायालय
सत्र न्यायालय
उप न्यायालय
न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम श्रेणी)
मुख्य कनिष्ठ दीवानी न्यायाधीष न्यायालय
न्यायिक मजिस्ट्रेट (द्वितीय श्रेणी)

न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिए किये गये संवैधानिक प्रावधान

न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाये रखने के लिए निम्न लिखित संवैधानिक प्रावधान किये गये हैं–
1– न्यायाधीशों की नियुक्ति में संसद व विधानसभाओं की कोई भूमिका नहीं है।
2– न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए निश्चित योग्यताएँ व अनुभव दिये गये हैं।
3– न्यायपालिका अपने वेतन, भत्तों व अन्य आर्थिक सुविधाओं के लिए कार्यपालिका अथवा संसद पर निर्भर नहीं है। उनके खर्चों से सम्बन्धित बिल पर बहस और मतदान नहीं होता।
4– न्यायाधीशों का सेवाकाल लम्बा व सुनिश्चित होता है यद्यपि कुछ परिस्थितियों में इनको हटाया भी जा सकता है परंतु महाभियोग की प्रक्रिया काफी लम्बी व मुष्किल होती है।
5– न्यायाधीशों के कार्यों व निर्णयों के आधार पर उनकी व्यक्तिगत आलोचना नहीं की जा सकती।
6– जो न्यायालय की व इसके निर्णयों की अवमानना करते हैं न्यायालय उन्हें दण्डित कर सकता है।
7– न्यायालय के निर्णय बाध्यकारी होते हैं।

स्वतंत्र न्यायपालिका का महत्व या लाभ

स्वतंत्र न्यायपालिका का महत्व इन तथ्यों के आधार पर स्पष्ट होता है–
1– नागरिकों की स्वतंत्रता एवं अधिकारों की रक्षा– स्वतंत्र न्यायपालिका ही नागरिकों की स्वतंत्रता और मौलिक अधिकारों की रक्षा कर सकती है। संविधान ने नागरिकों को 6 प्रकार के मौलिक अधिकार दिये हैं जिन पर यदि कोई प्रतिबंध लगाने का प्रयत्न करता है तो न्यायपालिका उसे दण्डित करने का प्रावधान कर सकती है।
2– निष्पक्ष न्याय की प्राप्ति– न्यायपालिका को अपने इस महत्वपूर्ण कार्य के सम्पादन के लिए स्वतंत्र होना आवश्यक है। उसके कार्यों में व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका का कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।
3– लोकतंत्र की सुरक्षा– लोकतंत्र के अनिवार्य तत्व स्वतंत्रता और समानता है। अतः नागरिकों को स्वतंत्रता और समानता के अवसर उसी समय प्राप्त हो सकेंगे जब न्यायपालिका निष्पक्षता के साथ अपने कार्य का सम्पादन करेगी।
4– संविधान की सुरक्षा– स्वतंत्र न्यायपालिका संविधान का रक्षक होती है। न्यायपालिका संविधान विरोधी कानूनों को अवैध घोषित करके रद्‌द कर देती है। अतः संविधान के स्थायित्व एवं सुरक्षा के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका का होना आवश्यक है।
5– व्यवस्थापिका और कार्यपालिका पर नियंत्रण– स्वतंत्र न्यायपालिका व्यवस्थापिका और कार्यपालिका पर नियंत्रण रखकर शासन की कार्यकुशलता में वृद्धि करती है।

सर्वोच्च न्यायालय का गठन

सर्वोच्च न्यायालय के गठन के बारे में प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 124 (1) में दिया गया है। अनुच्छेद 124 (1) के तहत मूल संविधान में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या एक मुख्य न्यायाधीश तथा सात अन्य न्यायाधीशों को मिलाकर कुल 8 रखी गयी थी। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या, क्षेत्राधिकार, न्यायाधीशों के वेतन एवं शर्तें निश्चित करने का अधिकार संसद को दिया गया है। इस शक्ति का प्रयोग कर संसद ने समय–समय पर न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि कर सकता है। वर्तमान में सर्वोच्च न्यायालय में कुल न्यायाधीशों की संख्या 31 है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति

1950 से 1973 तक व्यवहार में यह था कि उच्चतम न्यायालय में वरिष्ठतम न्यायाधीश को बतौर मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया जाता था। इस व्यवस्था का 1973 में तब हनन हुआ जब ए0एन0रे को तीन वरिष्ठतम न्यायाधीशों से ऊपर भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर दिया गया। पुनः 1975 में न्यायमूर्ति एच0आर0 खन्ना को पीछे छोड़ते हुए न्यायमूर्ति एम0एच0 बेग की नियुक्ति की गई।

सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। इसके साथ ही साथ उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों एवं सम्बन्धित राज्य के राज्यपाल की सलाह पर करता है। संविधान में मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए कोई पृथक प्रावधान नहीं है लेकिन मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति में केवल दो मामलों को छोड़कर सदैव वरिष्ठता के सिद्धान्त को अपनाया गया। 1993 में उच्चतम न्यायालय ने बहुमत से यह निर्णय दिया कि भारत के मुख्य न्यायाधीश के पद पर उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश की ही नियुक्ति की जाएगी। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालयों के दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों से विचार विमर्श करने के पश्चात् ही राष्ट्रपति को अपना परामर्श देगा।

तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति

संविधान के अनुच्छेद 127 के अनुसार मुख्य न्यायाधीश, राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति से तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्तियां भी कर सकता है। उच्च न्यायालय के ऐसे न्यायाधीश जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश बनने की योग्यता रखते हों, राष्ट्रपति सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के आधार पर तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है।

उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों की योग्यताएँ

उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीश बनने की निम्नलिखित योग्यताएँ हैं–

1– वह भारत का नागरिक हो।

2– वह किसी उच्च न्यायालय में कम से कम पॉच वर्ष तक न्यायाधीश रह चुका हो। अथवा वह एक या अधिक उच्च न्यायालय में लगातार कम से कम 10 वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो।

3– वह राष्ट्रपति की दृष्टि में एक पारंगत विधिवेत्ता हो।

उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों का कार्यकाल

उच्चतम न्यायालय के सभी न्यायाधीश (मुख्य न्यायाधीश एवं अन्य न्यायाधीश) 65 वर्ष की आयु तक अपना पद धारण करते हैं।

न्यायाधीशों को पद से हटाया जाना

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को उनके पद से हटाना काफी कठिन है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को उनके पद से हटाने की प्रक्रिया अनुच्छेद 124(4) में दी गयी है, उन्हें केवल दो आधारों पर पद से हटाया जा सकता है–

(1) साबित कदाचार

(2) असमर्थता के आधार पर।

न्यायाधीश के विरूद्ध आरोपों पर संसद के एक विशेष बहुमत की स्वीकृति जरूरी होती है। किसी न्यायाधीश को उसके पद से हटाने के लिए प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन में लाया जा सकता है। प्रस्ताव प्रत्येक सदन द्वारा अपनी कुल सदस्य संख्या के बहुमत तथा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के 2/3 (दो–तिहाई) बहुमत से पारित होना चाहिए। इस प्रक्रिया के दौरान आरोपित न्यायाधीश को अपने पक्ष में समर्थन और पैरवी करने का अधिकार होता है। संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित प्रस्ताव राष्ट्रपति के समक्ष आदेश के लिए रखा जाता है। इस प्रस्ताव पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने के पश्चात् न्यायाधीश को उसके पद से हटना पड़ता है।

उल्लेखनीय है कि अभी तक उच्चतम न्यायालय के एक भी न्यायाधीश को उसके पद से हटाया नहीं गया है। यद्यपि हटाने की प्रक्रिया निम्न न्यायाधीशों के विरूद्ध आरम्भ की गयी थी।

1– न्यायाधीश वी0रामास्वामी का मामला – न्यायमूर्ति वी0 रामास्वामी उच्चतम न्यायालय के ऐसे प्रथम न्यायाधीश हैं जिनको हटाने के लिए 1991 में लोकसभा में प्रस्ताव लाया गया था। श्री रामास्वामी पर पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश रहने के दौरान वित्तीय अनियमितताओं का आरोप था इसके एक वर्ष बाद 1992 में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की एक उच्च स्तरीय जांच समिति ने न्यायामूर्ति वी0 रामास्वामी को पंजाब व हरियाणा के मुख्य न्यायाधीश रहते सार्वजनिक धन के निजी उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करने और संवैधानिक नियमों की अवहेलना करने के कारण तथा पद का जानबूझकर दुरूपयोग करने का दोषी पाया गया। इतने कठोर आरोपों के बाद भी रामास्वामी पर संसद में महाभियोग सिद्ध नहीं हो सका। महाभियोग के प्रस्ताव के पक्ष में सदन में मौजूद और मतदान करने वाले सदस्यों के 2/3 मत तो पड़े लेकिन कांग्रेस पार्टी ने सदन के मतदान में भाग नहीं लिया अतः प्रस्ताव पारित नहीं हो सका।

2– सौमित्र सेन का मामला– कोलकाता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सौमित्र सेन भारत के दूसरे न्यायाधीश हैं जिनको हटाने के लिए 2011 में राज्यसभा में प्रस्ताव पारित किया गया लेकिन लोकसभा में प्रस्ताव पेश किये जाने के पूर्व ही उन्होंने त्यागपत्र दे दिया।

3– पी0डी0 दिनाकरन का मामला– सिक्किम उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पी0डी0 दिनाकरन के विरूद्ध भी कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश रहने के दौरान वित्तीय अनियमितताओं का आरोप लगाया गया था। श्री दिनाकरन ने 2010 में राज्यसभा में महाभियोग की कार्यवाही प्रारम्भ करने से पूर्व ही अपने पद से त्यागपत्र दे दिया।

उच्च न्यायालय का गठन

संविधान के भाग 6, अनुच्छेद 214 से 232 में राज्यों के उच्च न्यायालय के बारे में प्रावधान किया गया है। उच्च न्यायालय राज्य का सबसे बड़ा न्यायालय होता है। प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा ऐसे अन्य न्यायाधीश होते हैं जिन्हें राष्ट्रपति समय–समय पर अनुच्छेद 216 के तहत नियुक्त करता है। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या निश्चित नहीं है उनकी संख्या आवश्यकतानुसार समय–समय पर राष्ट्रपति द्वारा बढ़ाई जा सकती है। वर्तमान में उच्च न्यायालयों की संख्या 24 है। उत्तराखण्ड का उच्च न्यायालय नैनीताल में है जो उच्च न्यायालय निर्माण के क्रम में 20वें नम्बर का है, उसके बाद क्रमशः झारखण्ड, मणिपुर, मेघालय तथा त्रिपुरा उच्च न्यायालय हैं। संविधान के अनुच्छेद 231 के तहत संसद द्वारा दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक ही उच्च न्यायालय स्थापित किया गया हो तब ऐसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के समय राष्ट्रपति उन सभी राज्यों के राज्यपालों से परामर्श करेगा जिन पर वह उच्च न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है।

उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की योग्यताएॅ

उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश बनने की निम्नलिखित योग्यताएॅ हैं–

1– वह भारत का नागरिक हो।

2– भारत राज्य क्षेत्र में कम से कम 10 वर्ष तक न्यायिक पद पर कार्य कर चुका हो अथवा एक या एक से अधिक राज्यों के उच्च न्यायालयों में लगातार कम से कम 10 वर्ष तक अधिवक्ता रह चुका हो।

3– वह राष्ट्रपति की दृष्टि में एक पारंगत विधिवेत्ता हो।

उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का कार्यकाल– उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्यकाल 62 वर्ष की आयु तक होता है।

उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को पद से हटाया जाना

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को उनके पद से हटाने की प्रक्रिया, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को पद से हटाने की प्रक्रिया के साथ अनुच्छेद 124(4) में दी गयी है, उन्हें केवल दो आधारों पर पद से हटाया जा सकता है–

(1) साबित कदाचार

(2) असमर्थता के आधार पर।

न्यायाधीश के विरूद्ध आरोपों पर संसद के एक विशेष बहुमत की स्वीकृति जरूरी होती है। किसी न्यायाधीश को उसके पद से हटाने के लिए प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन में लाया जा सकता है। प्रस्ताव प्रत्येक सदन द्वारा अपनी कुल सदस्य संख्या के बहुमत तथा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के 2/3 (दो–तिहाई) बहुमत से पारित होना चाहिए। इस प्रक्रिया के दौरान आरोपित न्यायाधीश को अपने पक्ष में समर्थन और पैरवी करने का अधिकार होता है। संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित प्रस्ताव राष्ट्रपति के समक्ष आदेश के लिए रखा जाता है। इस प्रस्ताव पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने के पश्चात् न्यायाधीश को उसके पद से हटना पड़ता है।

सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार

भारत का सर्वोच्च न्यायालय विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली न्यायालयों में से एक है लेकिन वह संविधान द्वारा तय की गई सीमा के अंदर ही कार्य करता है इस आधार पर सर्वोच्च न्यायालय के निम्न क्षेत्राधिकार हैं–

1– मूल क्षेत्राधिकार– मूल क्षेत्राधिकार का अर्थ है कि कुछ मुकदमों की सुनवाई सीधे सर्वोच्च न्यायालय कर सकता है ऐसे मुकदमों में पहले निचली अदालतों में सुनवाई जरूरी नहीं। किसी भी संघीय व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों के बीच अथवा विभिन्न राज्यों में परस्पर कानूनी विवादों का उठना स्वाभाविक है इन विवादों को हल करने की जिम्मेदारी भारतीय संविधान के अनुच्छेद 131 के तहत सर्वोच्च न्यायालय की है इसे ही मूल क्षेत्राधिकार या प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार कहते हैं क्योंकि इन मामलों को केवल सर्वोच्च न्यायालय ही हल कर सकता है।

2– अपीलीय क्षेत्राधिकार– सर्वोच्च न्यायालय अपील का उच्चतम न्यायालय है कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर सकता है लेकिन उच्च न्यायालय को इस सम्बन्ध में प्रमाणपत्र देना पड़ता है कि वह मुकदमा सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने लायक है अर्थात् उसमें संविधान या कानून की व्याख्या से संबंधित कोई गंभीर मामला उलझा है। अगर आपराधिक मामले में निचली अदालत किसी को फांसी की सजा दे दे तो उसकी अपील सर्वोच्च या उच्च न्यायालय में की जा सकती है। यदि किसी मुकदमें में उच्च न्यायालय अपील की आज्ञा न दे तब भी सर्वोच्च न्यायालय के पास यह शक्ति है कि वह उस मुकदमे में की गई अपील को अनुच्छेद 132 के तहत विचार के लिए स्वीकार कर ले। अपीलीय क्षेत्राधिकार का अर्थ है कि सर्वोच्च न्यायालय

पूरे मुकदमे पर पुनर्विचार करेगा और समस्त मुकदमे की दोबारा जांच करेगा और उन प्रावधानों की नई व्याख्या कर निर्णय को भी बदल सकता है।

3– रिट/आदेश संबंधी क्षेत्राधिकार– नागरिकों के मौलिक अधिकारों के हनन होने पर वे अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय एवं अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय जा सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय अपने विशेष आदेश रिट के रूप में दे सकता है। अनुच्छेद 226 के तहत मौलिक अधिकारों का हनन होने पर उच्च न्यायालय भी 5 प्रकार के रिट जारी कर सकता है।

(क)–<u>बंदी प्रत्यक्षीकरण–</u> इस शाब्दिक अर्थ है शरीर को प्रस्तुत किया जाए। यह रिट ऐसे व्यक्ति या प्राधिकारी के विरूद्ध जारी की जा सकती है जिसने किसी व्यक्ति को अवैध रूप से गिरफ्तार किया हो। इसके द्वारा न्यायालय गिरफ्तार किये व्यक्ति को अपने समक्ष उपस्थित करने के निर्देश देता है। गिरफ्तार व्यक्ति निर्दोष साबित होता है तो न्यायालय उसे छोड़ने के आदेश देता है।

(ख)–<u>परमादेश–</u> इसका शाब्दिक अर्थ है हम आदेश देते हैं। इसके तहत न्यायालय किसी व्यक्ति, लोक प्राधिकारी, अधीनस्थ न्यायालय, सरकार या निगम को उनके कर्त्तव्यों के उचित तरीके से पालन करने के निर्देश देता है और ऐसे अधिकारी को आदेशित किया जाता है कि वह अपने सार्वजनिक कर्त्तव्यों का सही ढ़ंग से पालन करे।

(ग)–<u>प्रतिषेध–</u> इसका अर्थ रोकना या मना करना है। यह निषेधाज्ञा की भांति है। यह रिट वरिष्ठ न्यायालयों द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों तथा अर्द्ध न्यायिक अधिकरणों के विरूद्ध जारी की जाती है। इसके द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने से निषिद्ध किया जाता है जो उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है। यह रिट केवल न्यायिक या अर्द्ध न्यायिक कृत्यों के विरूद्ध जारी की जाती है। किसी कार्यपालिका या विधायी कृत्य अथवा किसी प्राइवेट व्यक्ति या संघ के विरूद्ध यह रिट जारी नहीं की जा सकती तथा यह रिट सिर्फ उसी स्थिति में जारी की जा सकती है जब कार्यवाही किसी न्यायालय या अधिकरण के समक्ष लम्बित हो।

(घ)–<u>उत्प्रेषण–</u> उत्प्रेषण का शाब्दिक अर्थ है 'मंगाना'। यह रिट अधीनस्थ न्यायालयों या अर्द्ध न्यायिक कार्य करने वाले निकायों के विरूद्ध जारी की जाती है। इसके द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को, अपने समक्ष आये मामलों को वरिष्ठ न्यायालयों को भेजने के निर्देश दिये जाते हैं। यह रिट इस आधार पर जारी की जाती है कि अधीनस्थ न्यायालय में अधिकारिता का अभाव या आधिक्य है अथवा उसने नैसर्गिक न्याय का उलंघन किया है या निर्णय लेने में वैधानिक गलती की हो।

प्रतिषेध और उत्प्रेषण दोनों रिटें अधीनस्थ न्यायालयों के विरूद्ध जारी की जाती हैं किन्तु दोनों रिटों का उद्देश्य पृथक है। प्रतिषेध रिट कार्यवाही के दौरान या कार्यवाही को रोकने हेतु जारी की जाती है जबकि उत्प्रेषण रिट कार्यवाही की समाप्ति पर दिये निर्णय को रद्द करने हेतु।

(ड)– <u>अधिकार पृच्छा</u>– इसका शाब्दिक अर्थ है किस अधिकार से या आपका प्राधिकार क्या है? यह रिट ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध जारी की जाती है जो किसी ऐसे पद पर बैठा है जो उसके योग्य नहीं है। इसके द्वारा उस से पूछा जाता है कि वह किस अधिकार से उस पद को धारण किये हुए है? यदि वह अवैध तरीके से पद धारण किये हुए है तो उसे उस पद से हटाकर पद को रिक्त घोषित कर दिया जाता है।

4– <u>सलाह सम्बन्धी क्षेत्राधिकार–</u> भारत का राष्ट्रपति अनुच्छेद 143 के तहत लोकहित या संविधान की व्याख्या से संबंधित किसी विषय को सर्वोच्च न्यायालय के पास परामर्श के लिए भेज सकता है लेकिन न तो सर्वोच्च न्यायालय ऐसे किसी विषय पर सलाह देने के लिए बाध्य है और न ही राष्ट्रपति न्यायालय की सलाह मानने को। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि सर्वोच्च न्यायालय के परामर्श की शक्ति की क्या उपयोगिता है? इसकी मुख्य दो उपयोगिताएँ हैं –

1–इससे सरकार को छूट मिल जाती है कि किसी महत्वपूर्ण मामले में कार्यवाही करने से पहले वह न्यायालय की कानूनी राय जान ले। इस से बाद में कानूनी विवाद से बचा जा सकता है।

2– सर्वोच्च न्यायालय की सलाह मानकर सरकार अपने प्रस्तावित निर्णय या विधेयक में समुचित संशोधन कर सकती है।

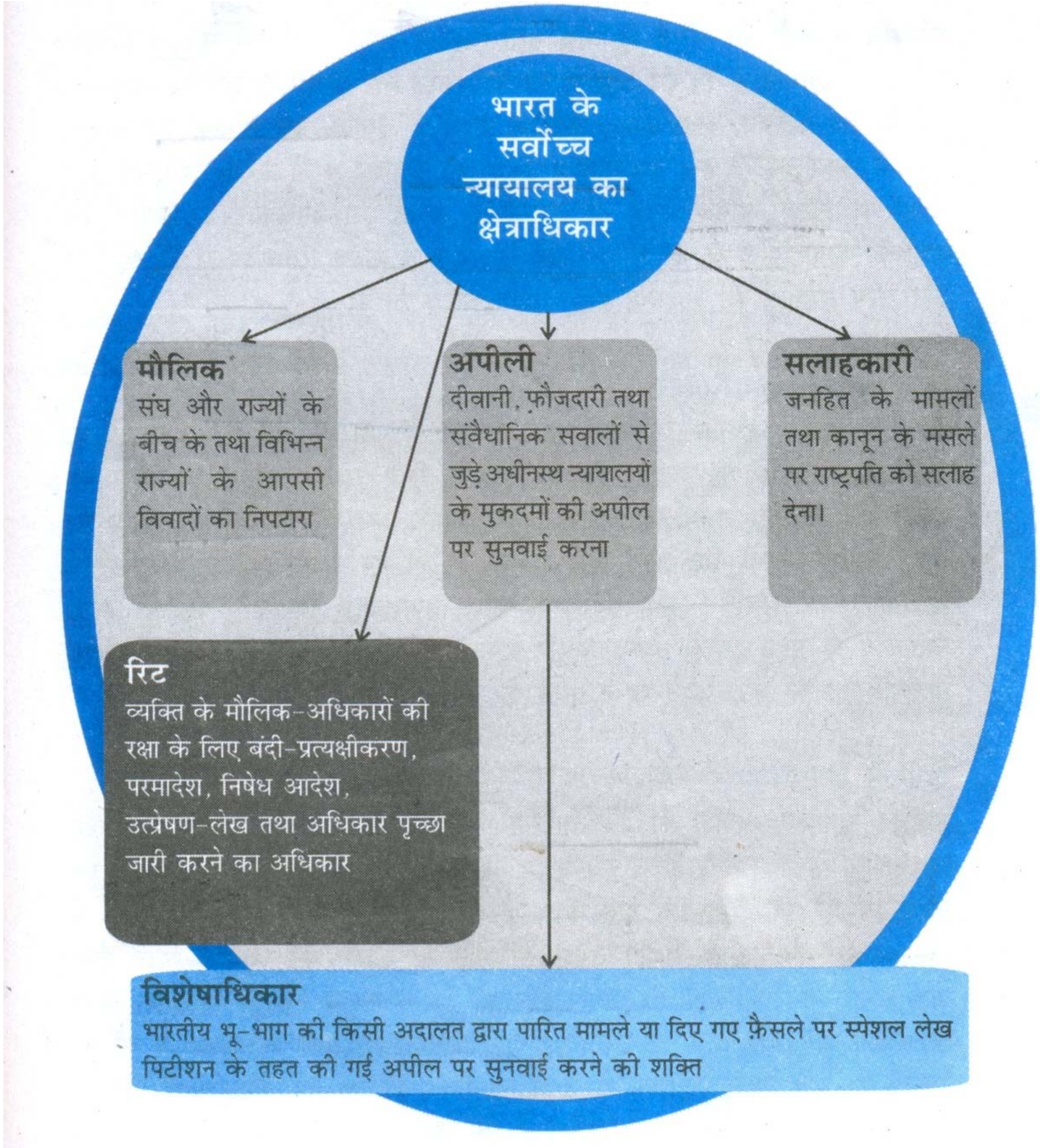

न्यायपालिका के कार्य

न्यायपालिका निम्नलिखित कार्यों का सम्पादन करती है–

1– मुकदमे का निर्णय करना– व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानूनों को कार्यपालिका लागू करती है, न्यायपालिका उन व्यक्तियों को दण्डित करती है जो कानून का पालन नहीं करते या कानूनों के विरूद्ध आचरण करते हैं। इसके अतिरिक्त न्यायपालिका दीवानी या फौजदारी मामलों से सम्बन्धित विवादों पर निर्णय देती है।

2– संवैधानिक कानून की व्याख्या– भारत में व्यवस्थापिका द्वारा बनाये गये नियमों एवं कानूनों की व्याख्या करने का अधिकार केवल सर्वोच्च न्यायालय को है।

3– मौलिक अधिकारों की सुरक्षा– संविधान में उल्लेखित 6 प्रकार के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा का कार्य भी न्यायालय द्वारा किया जाता है।

4– <u>परामर्श सम्बन्धी कार्य</u>– न्यायपालिका परामर्श देने का भी कार्य करती है। हमारे देश का उच्चतम न्यायालय आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति को कानूनी मामलों में परामर्श दे सकता है लेकिन राष्ट्रपति उसके परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है।

5– <u>संविधान की संरक्षिका</u>– लिखित संविधान वाले देशों में न्यायपालिका संविधान की संरक्षक होती है। व्यवस्थापिका द्वारा पारित ऐसा कानून जो संविधान के विरूद्ध हो न्यायपालिका द्वारा अवैध घोषित किया जा सकता है।

6– <u>रिट/लेख जारी करना</u>– सामान्य नागरिकों या सरकारी अधिकारियों द्वारा जब अनुचित या अनधिकृत कार्य किया जाता है तो न्यायालय उन्हें ऐसा करने से रोकने के लिए 5 प्रकार के रिट जारी करता है।

<u>उच्चतम न्यायालय का अभिलेखीय न्यायालय होना</u>

भारत का उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 129 के तहत अभिलेख (रिकॉर्ड) न्यायालय के रूप में भी कार्य करता है। अभिलेख न्यायालय का यह तात्पर्य है कि न्यायालय के समस्त निर्णयों को अभिलेख के रूप में सुरक्षित रखा जाता है। इन निर्णयों को भविष्य में देश के किसी भी न्यायालय में पूर्व उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। उच्चतम न्यायालय को यह भी अधिकार प्राप्त होता है कि वह अपनी मानहानि के लिए किसी भी व्यक्ति को जुर्माना अथवा कारावास का दण्ड़ दे सकता है। इसी प्रकार उच्च न्यायालय भी अनुच्छेद 215 के तहत एक अभिलेखीय न्यायालय के रूप में कार्य करता है।

अनुच्छेद 233 के तहत जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया है। प्रत्येक जिले में एक जिला न्यायालय होता है जिसका जिले में अपील संबंधी क्षेत्राधिकार होता है। जिला न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति राज्यपाल उच्च न्यायालय के परामर्श के अनुसार करता है। जिला न्यायाधीशों की योग्यता– वह किसी न्यायालय में 7 वर्ष तक वकील रहा हो।

प्रत्येक जिले में तीन प्रकार के न्यायालय होते हैं–

1– फौजदारी न्यायालय– आपराधिक मामलों पर सुनवाई करता है।

2– दीवानी न्यायालय– चल–अचल सम्पत्ति की सुनवाई करने वाला होता है।

3– भू–राजस्व न्यायालय– भूमि संबंधी मामले इसके अन्तर्गत आते हैं।

ग्राम न्यायालयों के न्यायाधीश की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालयों के परामर्श से की जायेगी।

<u>न्यायिक सक्रियता एवं जनहित याचिका</u>

भारत में न्यायिक सक्रियता का मुख्य साधन जनहित याचिका या सामाजिक व्यवहार याचिका रही है। अपने अधिकारों का उल्लंघन होने या किसी विवाद में फंसने पर कोई व्यक्ति न्याय पाने के लिए न्यायालय जा सकता है। 1979 में इस धारणा में बदलाव की शुरूआत करते हुए न्यायालय ने एक ऐसे मुकदमे की सुनवाई करने का निर्णय लिया जिसे पीड़ित लोगों ने नहीं बल्कि उनकी ओर से

दूसरों ने दाखिल किया था। चूंकि इस मामले में जनहित से सम्बन्धित मुद्दे पर विचार हो रहा था अतः इस प्रकार के मामलों को ही जनहित याचिकाओं के नाम से जाना गया।

भारत में इसकी शुरूआत भांगलपुर बिहार की जेल में बंदी रखे गये विचारधीन कैदियों के मामले से हुई। भारत में लोकहित वाद शुरू करने का श्रेय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पी0एन0भगवती तथा न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर को जाता है। पी0एन0 भगवती ने इसका उल्लेख निम्न प्रकार से किया– यदि कोई व्यक्ति या समाज का वर्ग जिसको विधिक क्षति पहुंचाई गयी है या विधिक अधिकारों का अतिक्रमण हुआ है या अपनी निर्धनता या अन्य किसी कारण से अपने संवैधानिक या विधिक अधिकारों के संरक्षण के लिए न्यायालय जाने में असमर्थ है तो समाज का कोई अन्य व्यक्ति या संस्था उसकी क्षति के निवारण के लिए अनुच्छेद 32 के अधीन आवेदन कर सकता है। इसी को न्यायिक सक्रियता भी कहा जाता है। जनहित याचिका के मामले उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों में प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

न्यायिक सक्रियता का मानव जीवन पर प्रभाव

न्यायिक सक्रियता का मानव जीवन पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ा है–

1– उच्चतम न्यायालय ने जनहितकारी विवादों को मान्यता प्रदान की है। इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे समूह अथवा वर्ग की ओर से मुकदमा लड़ सकता है जिसको उसके कानूनों अथवा संवैधानिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया है।

2– उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 की नवीन व्याख्या की है तथा आम आदमी के जीवन व सुरक्षा को वास्तविक बनाने का प्रयास किया गया है।

3– उच्चतम न्यायालय ने नागरिकों की गरिमा तथा प्रतिष्ठा की सुरक्षा की ओर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है।

4– उच्चतम न्यायालय ने पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है कि कार्यपालिका के 'स्वविवेक' पर नियंत्रण किया जाना चाहिए।

जनहित याचिकाओं का महत्व

जनहित याचिकाओं का मानव जीवन में निम्नलिखित महत्व है–

1– सामान्य जनता की आसान पहुंच– जनहित याचिकाओं द्वारा आम नागरिक भी व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से न्याय के लिए न्यायालय के दरवाजे खटखटा सकता है। जनहित याचिकाओं के लिए किन्हीं विशेष कानूनी प्रावधानों के चक्कर में उलझना नहीं पड़ता है। व्यक्ति सीधे उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय में अपना वाद प्रस्तुत कर सकता है।

2–शीघ्र निर्णय– जनहित याचिकाओं पर न्यायालय तुरन्त न्यायिक प्रक्रिया को प्रारम्भ कर देता है तथा उन पर जल्दी ही सुनवाई होती है। उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 तथा 32 की राज्य द्वारा अवज्ञा के मामलों को बहुत ही गंभीरता से लिया है।

3– <u>प्रभावी राहत</u>– अधिकांश जनहित याचिकाओं में यह देखने को मिलता है कि इसमें पीड़ित पक्ष को राहत मिल जाती है तथा प्रतिवादी को सजा देने का भी प्रावधान है।

4– <u>कम व्यय</u>– जनहित याचिकाओं में याचिका प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति का खर्चा बहुत कम होता है क्योंकि इसमें सामान्य न्यायिक प्रक्रिया से गुजरना नहीं पड़ता है। यदि न्यायालय याचिका को निर्णय के लिए स्वीकार कर लेता है तो उस पर तुरंत कार्यवाही के कारण शीघ्र निर्णय हो जाता है।

<u>लोक अदालतें</u>

वर्ष 1976 में 42वें संविधान संशोधन द्वारा भारत के संविधान में अनुच्छेद 39 क जोड़ा गया। जिसके द्वारा शासन से अपेक्षा की गई कि वह सुनिश्चित करे कि भारत का कोई भी नागरिक, आर्थिक या किसी अन्य अक्षमताओं के कारण न्याय पाने से वंचित न रह जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सबसे पहले 1980 में केन्द्र सरकार के निर्देश पर सारे देश में कानूनी सहायता बोर्ड की स्थापना की गई। बाद में इसे कानूनी जामा पहनाने हेतु भारत सरकार द्वारा विधिक सेवा प्राधिकार अधिनियम 1987 पारित किया गया जो 9 नवम्बर 1995 में लागू हुआ। इस अधिनियम के अन्तर्गत विधिक सहायता एवं लोक अदालत का संचालन का अधिकार राज्य स्तर पर राज्य विधिक सेवा प्राधिकार को दिया गया।

राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण में कार्यकारी अध्यक्ष के रूप में उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त अथवा सेवारत न्यायाधीश और सदस्य सचिव के रूप में वरिष्ठ जिला जज की नियुक्ति की जाती है। इसके अतिरिक्त महाधिवक्ता, सचिव वित्त, सचिव विधि, अध्यक्ष अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयोग, मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से दो जिला न्यायाधीश तथा अध्यक्ष बार काउन्सिल इस राज्य प्राधिकरण के सचिव सदस्य होते हैं और इसके अतिरिक्त मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से 4 अन्य व्यक्तियों को नाम निर्दिष्ट सदस्य बनाया जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक जिले में जिला विधिक सेवा प्राधिकरण का गठन किया गया है।

<u>लोक अदालत के सदस्य की योग्यताएँ</u>

1– विधि व्यवसायी व्यक्ति हो, अथवा
2– ऐसा प्रतिष्ठित व्यक्ति हो जो विधिक सेवा कार्यक्रमों एवं योजनाओं के क्रियान्वयन में विशेष रूचि रखता हो, अथवा
3– ऐसा उत्कृष्ट सामान्य कार्यकर्त्ता हो जो कमजोर वर्ग के लोगों, महिलाओं, बच्चों, ग्रामीण एवं शहरी श्रमिकों के उत्थान के लिए कार्य कर रहा हो।

लोक अदालतों की अधिकारिता

विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम की धारा 19(5) के अनुसार लोक अदालत को निम्नलिखित अधिकारिता प्राप्त है–

1– लोक अदालत के क्षेत्र के न्यायालय में लम्बित प्रकरण, अथवा

2– ऐसे प्रकरण जो लोक अदालत के क्षेत्रीय न्यायालय में आते हों, लेकिन उनके लिए वाद संस्थित न किया गया हो।

परंतु लोक अदालत को ऐसे किसी मामले या वाद पर अधिकारिता प्राप्त नहीं है जिसमें कोई अशमनीय अपराध किया गया हो। ऐसे प्रकरण जो न्यायालय में लम्बित पड़े हों, पक्षकारों द्वारा न्यायालय की अनुज्ञा के बिना लोक अदालत में नहीं लाये जा सकते।

लोक अदालतों से लाभ

लोक अदालतों से निम्नलिखित लाभ हैं–

1– वकील पर खर्च नहीं होता।

2– कोर्ट फीस नहीं लगती।

3– पुराने मुकदमे की कोर्ट फीस वापस हो जाती है।

4– किसी पक्ष को सजा नहीं होती। मामले को बातचीत द्वारा सफाई से हल कर लिया जाता है।

5– मुआवजा और हर्जाना तुरन्त मिल जाता है।

6– मामले का निपटारा तुरन्त मिल जाता है।

7– सभी को आसानी से न्याय मिल जाता है।

8– इस प्रकार से सुलझाये गये विवादों का फैसला अंतिम होता है तथा इसके विरूद्ध कहीं भी अपील नहीं की जा सकती।

भारत की संघात्मक व्यवस्था में न्यायपालिका की भूमिका

समस्त प्रकार की शासन प्रणालियों में न्यायपालिका की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, परंतु संघात्मक व्यवस्था में न्यायपालिका के दायित्व और भी बढ़ जाते हैं। संघात्मक व्यवस्था में शासन की सत्ता एक लिखित एवं कठोर संविधान द्वारा केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विभाजित होती है। केन्द्र की सरकार केवल उन विषयों पर ही कानून का निर्माण कर सकती है, जो संघ सूची में वर्णित होते हैं तथा राज्य सरकारें राज्य सूची के विषयों पर ही कानून का निर्माण कर सकती हैं। किसी भी सरकार को दूसरी सरकार के क्षेत्र का अतिक्रमण करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता है। यदि ऐसा होता है तो संघात्मक व्यवस्था समाप्त हो जाएगी।

न्यायपालिका को यह अधिकार प्राप्त है कि वह शासन के कार्यक्षेत्र एवं शक्तियों पर अपना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अंकुश रखे जिससे इन शक्तियों का दुरूपयोग या अतिक्रमण न होने पाये।

इसीलिए न्यायपालिका को यह शक्ति प्राप्त होती है कि वह ऐसे किसी भी कानून अथवा आदेश को अवैध घोषित कर दे जो संविधान की धाराओं का उल्लंघन करता हो। एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका ही अपने दायित्वों का समुचित रूप से पालन कर सकती है। यदि न्यायपालिका अपने इस अधिकार का प्रयोग न करे तो संघात्मक व्यवस्था एकात्मक शासन व्यवस्था में परिवर्तित हो जाएगी तथा संविधान का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा।

न्यायपालिका और संसद में सम्बन्ध

न्यायपालिका और संसद संविधान निर्माण के पश्चात् अपने–अपने कर्तव्यों का पालन करते आ रहे हैं। न्यायपालिका ने अधिकार के मुद्दे पर सक्रियता के साथ–साथ राजनैतिक व्यवहार से संविधान का पालन न करने वालों पर भी अंकुश लगाया है। जो विषय पहले न्यायिक पुनरावलोकन के दायरे में नहीं थे उन्हें अब इस दायरे में ले लिया गया है जैसे– राष्ट्रपति और राज्यपाल की शक्तियां। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय ने हवाला मामले, नरसिंहराव मामले और पेट्रोल पंपों के अवैध आबंटन जैसे मामलों में सी0बी0आई0 को निर्देश दिया कि वह भ्रष्ट राजनेताओं और नौकरशाहों के विरूद्ध जांच करे।

भारतीय संविधान शक्ति के सीमित बंटवारे, अवरोध तथा संतुलन के सिद्धान्त पर आधारित है। सरकार के प्रत्येक अंग का अपना–अपना कार्यक्षेत्र है। संसद या विधायिका का कार्य कानून बनाना, कार्यपालिका का कार्य उन कानूनों का क्रियान्वयन करना तथा न्यायपालिका का कार्य विधायिका द्वारा बनाये गये कानूनों, नियमों, विनियमों एवं कार्यपालिका द्वारा किये गये कार्यों की जांच करना है, लेकिन पृथक–पृथक कार्यों के होते हुए भी विधायिका और न्यायपालिका तथा कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच मतभेद भारतीय राजनीति की विशेषता रही है।

संविधान लागू होने के बाद सम्पत्ति के अधिकार पर रोक लगाने की संसद की शक्ति पर विवाद खड़ा हो गया। संसद सम्पत्ति के अधिकार पर कुछ प्रतिबंध लगाना चाहती थी जिससे भूमि सुधारों को लागू किया जा सके। न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं कर सकती। संसद ने तब संविधान में संशोधन करने का प्रयास किया लेकिन न्यायालय ने कहा कि संविधान के संशोधन के द्वारा भी मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं किया जा सकता है। 1967 से 1973 के बीच यह विवाद काफी गहरा गया।

भूमि सुधार कानूनों के अतिरिक्त निवारक नजरबंदी कानून, नौकरियों में आरक्षण सम्बन्धी कानून, सार्वजनिक उद्देश्य के लिए निजी सम्पत्ति के अधिग्रहण सम्बन्धी कानून और अधिगृहीत निजी सम्पत्ति के मुआवजे सम्बन्धी कानून आदि इस प्रकार विवाद के उदाहरण हैं।

1973 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्णय दिया जो संसद और न्यायपालिका के संबंधों के नियमन में बहुत ही महत्वपूर्ण हो गया। यह वाद केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य के रूप में प्रसिद्ध हो गया। इस मुकदमे में न्यायालय ने निर्णय दिया कि संविधान का एक मूल ढ़ांचा है और संसद सहित कोई भी उस मूल ढ़ांचे से छेड़–छाड़ नहीं कर सकता। संविधान संशोधन द्वारा भी इस

मूल ढ़ांचे को नहीं बदला जा सकता। इसके अतिरिक्त न्यायालय ने कहा कि सम्पत्ति का अधिकार मूल ढ़ांचे का हिस्सा नहीं है और इसलिए उस पर समुचित प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

न्यायालय ने यह निर्णय का अधिकार भी अपने पास रखा कि कोई मुद्दा मूल ढ़ांचे का हिस्सा है या नहीं। यह निर्णय न्यायपालिका द्वारा संविधान की व्याख्या करने की शक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है।

न्यायपालिका और कार्यपालिका में सम्बन्ध

वर्तमान में न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच विवाद का मुख्य मुद्दा कॉलोजियम प्रणाली को लेकर भी रहा। प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित समिति ने कॉलोजियम प्रणाली को समाप्त करने एवं उसके स्थान पर न्यायिक नियुक्ति आयोग गठित करने पर संसद में 122वॉ संविधान संशोधन विधेयक रखा गया। सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा स्थानान्तरण के लिए 1993 से चली आ रही कॉलोजियम प्रणाली या वरिष्ठता सूची प्रणाली को 14 अक्टूबर 2015 को न्यायमूर्ति जे0एस0 खेहड़ की अध्यक्षता वाली 5 सदस्यीय संविधान पीठ ने 4:1 के बहुमत से राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग अधिनियम और 99वॉ संविधान संशोधन को रद्द कर पुनः कॉलोजियम प्रणाली को बहाल कर दिया।

अतः हमारे देश में यदि न्यायिक पदों पर प्रस्तावित व्यक्तियों के नाम सार्वजनिक रूप से विचार हों और उनके बारे में जन सामान्य की प्रतिक्रिया भी मालूम की जाए तो विवाद की स्थिति कुछ सामान्य हो जाएगी। लोकतंत्र में न्यायपालिका का बहुत महत्व है, जब–जब लोकतंत्र खतरे में होता है तो न्यायपालिका ही लोकतंत्र को उन खतरों से बचाती है। आशा है कि सर्वोच्च न्यायालय के नये मुख्य न्यायाधीश न सिर्फ कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच मधुर संबंध स्थापित करेंगे वरन् नियुक्ति कार्यप्रणाली में भी सुधार कर पायेंगे।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न 1– न्यायपालिका किसके प्रति जवाबदेह है?
प्रश्न 2– मुख्य न्यायाधीश सहित उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या कितनी है?
प्रश्न 3– उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति कौन करता है?
प्रश्न 4– उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का कार्यकाल कितना होता है?
प्रश्न 5– उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के पदच्युति का प्रस्ताव करने के लिए संविधान में क्या आधार बताये गये हैं?

लघु उत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न 1– भारत की संघात्मक व्यवस्था में न्यायपालिका की भूमिका पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
प्रश्न 2– न्यायिक सक्रियता का मानव के सामाजिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है?
प्रश्न 3– अभिलेखीय न्यायालय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
प्रश्न 4– कॉलोजियम प्रणाली पर विवेचना कीजिये।
प्रश्न 5– जनहित याचिका से क्या समझते हैं? संक्षिप्त विवेचना कीजिये।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

प्रश्न 1– न्यायपालिका द्वारा सम्पादित विभिन्न कार्यों का उल्लेख कीजिए।
प्रश्न 2– न्यायपालिका की स्वतंत्रता बनाये रखने के लिए संविधान के विभिन्न प्रावधान कौन–कौन से हैं?
प्रश्न 3– देश के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति में राष्ट्रपति की भूमिका को आप किस रूप में देखते हैं?
प्रश्न 4– स्वतंत्र न्यायपालिका के महत्व पर प्रकाश डालिए।
प्रश्न 5–उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार तथा शक्तियों का वर्णन कीजिए।